गरम होती धरती और बाली सम्मेलन

डॉ. राम प्रताप गुप्ता

सन 2007 में बाली द्वीप (इंडोनेशिया) में संपन्न जलवायु सम्मेलन वैश्विक तापक्रम में हो रही सतत वृद्धि को रोकने की दिशा में किए जाने वाले प्रयासों में मील का पत्थर माना जाएगा। जलवायु परिवर्तन पर चौथे अंतर्सरकारी पैनल ने अपनी रिपोर्ट में स्पष्ट प्रतिपादित किया था कि 'वैश्विक तापक्रम में वृद्धि को रोकना तथा उसे सीमित रखना आज की अहम' आवश्यकता है। बाली सम्मेलन से पूर्व जलवायु पर क्योटो सम्मेलन में यह स्पष्ट हुआ था कि विकासशील राष्ट्रों की तुलना में विकसित राष्ट्र कितनी अधिक मात्रा में ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन करते हैं। इसका अंदाज़ा इन आंकड़ों से लगता हैः भारत में प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष 1 किलोग्राम ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन होता है जबकि औसत अमेरिकी द्वारा 20 किलोग्राम से अधिक उत्सर्जन किया जाता है।

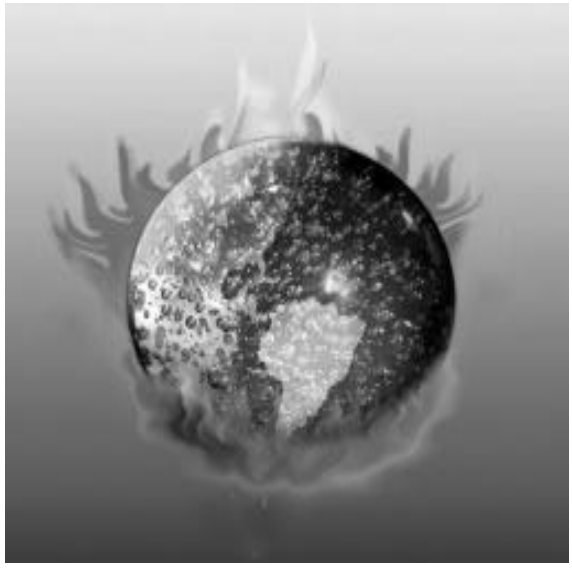

ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन के मुख्य स्रोत के मद्दे नज़र उसमें कमी के प्रयासों का मुख्य दायित्व भी विकसित राष्ट्रों पर डाला गया था। परंतु अमेरिका, कनाडा और जापान जैसे प्रमुख विकसित राष्ट्रों ने इस दायित्व को स्वीकार करने से यह कहकर इंकार कर दिया था कि ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी से उनके आम लोगों के रहन-सहन का स्तर प्रभावित होगा। इस तरह क्योटो सम्मेलन के निर्णयों को क्रियान्वित करने की दिशा में कोई प्रगति नहीं हो सकी। अमेरिका का यह भी कहना था कि बड़ी मात्रा में ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन करने वाले चीन, भारत जैसे राष्ट्रों को भी उत्सर्जन में कमी के प्रति अपनी प्रतिबद्धता प्रदर्शित करना चाहिए।

एक ओर तो क्योटो समझौते को क्रियान्वित करने की दिशा में असफलता तथा दूसरी ओर ग्रीनहाउस गैसों के बढ़ते उत्सर्जन के प्रतिकूल प्रभावों की पृष्ठभूमि में आयोजित बाली सम्मेलन से जलवायु परिवर्तन पर रोक लगाने की दिशा में कुछ होने की उम्मीद थी।

इन दिनों हवा एवं समुद्री पानी के बढ़ते तापमान और उत्तरी ध्रुव और हिमालय की बर्फ के पिघलने की बढ़ती गति आदि से ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन के स्पष्ट प्रमाण मिल रहे हैं। अब इन परिवर्तनों को लेकर किसी संदेह की गुंजाइश नहीं है। इसी पृष्ठभूमि में मौसम परिवर्तन पर अंतर्सरकारी पैनल ने स्पष्ट चेतावनी दी है कि जलवायु परिवर्तन के लिए ज़िम्मेदार मानवीय हस्तक्षेप पर अब रोक लगनी ही चाहिए। अंतर्सरकारी पैनल द्वारा 2 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि के खतरों को स्पष्ट रूप से परिभाषित कर देने से तापमान में इतनी वृद्धि ही एक सीमा रेखा के रूप में परिभाषित हो गई है। तापमान वृद्धि को इस सीमा तक सीमित रखने के लिए भी विश्व में ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी लाना आवश्यक हो गया है। सन 2005 में वायुमंडल में ग्रीनहाउस गैसों की मात्रा 375 पीपीएम थी जबकि औद्योगिक क्रांति के पूर्व इसकी मात्रा 280 पीपीएम ही थी। अगर हम तापमान वृद्धि को 2 से 2.4 डिग्री सेल्सियस के बीच थामना चाहते हैं तो हमें प्रारंभ में ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन की अधिकतम सीमा 445-490 पीपीएम तक रखकर और बाद के 10-15

वर्षो में इसमें गिरावट की प्रक्रिया लानी होगी, तथा सन 2050 तक उत्सर्जन में सन 2000 के स्तर की तुलना में 50 से 85 प्रतिशत की कमी करनी होगी। इन सीमाओं को हासिल करने के लिए विकास प्रक्रिया में परिवर्तन करना ज़रूरी है।

जलवायु परिवर्तन पर अंतर्सरकारी पैनल ने स्पष्ट चेतावनी दी है कि यदि समय रहते कदम न उठाए गए, तो इन परिवर्तनों के परिणाम स्वरूप एशिया में वर्षा में कमी होगी। जल चक्र के भंग हो जाने के कारण पानी का संकट पैदा होगा। बीमारियों का नक्शा स्थाई रूप से बदल जाएगा। खाद्यान्न की उपलब्धता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा, क्योंकि कृषि उत्पादकता में 15-20 प्रतिशत की कमी आ जाएगी। साथ ही पृथ्वी की 30 प्रतिशत प्रजातियों पर विलुप्ति का खतरा उत्पन्न हो जाएगा। जलवायु परिवर्तन एशिया और अफ्रीका के लोगों को सर्वाधिक प्रभावित करेगा। हिमालय की बर्फ के पिघलने से पहले तो उससे निकलने वाली नदियों में पानी बढ़ेगा, परंतु आगे चलकर उनमें पानी की मात्रा कम होती जाएगी।

इन सब संभावित परिवर्तनों की पृष्ठभूमि में हर राष्ट्र को खुद के लिए ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी के लक्ष्य निर्धारित करना होंगे। इन लक्ष्यों में राष्ट्रों की जिम्मेदारियां भी काफी अलग-अलग होंगी। विकासशील राष्ट्रों का मत है कि चूंकि अब तक उत्सर्जन में वृद्धि में मुख्य भूमिका विकसित राष्ट्रों की है अतः उत्सर्जन में कमी लाने की मुख्य ज़िम्मेदारी भी उन्हीं की है। लंबे समय से भारत का दृष्टिकोण यही रहा है कि विश्व की ग्रीनहाउस गैसों के अवशोषण की जो क्षमता है उसमें पूरे विश्व की जनता को समान भागीदारी मिलना चाहिए। दूसरी ओर, अमेरिका का दृष्टिकोण यह है कि विश्व के प्रत्येक राष्ट्र को ग्रीन हाउस गैसों के उनके द्वारा किए जा रहे उत्सर्जन में कमी करना चाहिए। अमेरिका के इसी अनुचित दृष्टिकोण के कारण क्योटो सम्मेलन असफल रहा था। तब भारत एवं चीन द्वारा उत्सर्जन में कमी लाने के किसी भी प्रस्ताव को स्वीकार न किए जाने का बहाना बनाकर अमेरिका ने भी अपने उत्सर्जन में कमी के किसी भी प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया था। वैसे क्योटो सम्मेलन के निर्णयों के अनुसार इंग्लैण्ड, जर्मनी जैसे कुछ विकसित राष्ट्रों ने उत्सर्जन में कमी के प्रयास भी किए हैं। विकसित राष्ट्रों में इंग्लैण्ड प्रथम राष्ट्र था जिसने अपने उत्सर्जन में कमी लाने के उद्देश्य से कानून पास किया। जर्मनी ने भी उसका अनुसरण किया। इंग्लैण्ड द्वारा पारित कानून के माध्यम से उसके उत्सर्जन में सन 2050 तक 60 प्रतिशत की कमी आ सकेगी। विश्व जनमत के दबाव में अमेरिका ने भी सीनेट में इस सम्बंध में एक प्रस्ताव रखा है परंतु अभी तक दोनों सदनों ने इसे पारित नहीं किया है। ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी तथा तापमान में वृद्धि को रोकने की दिशा में इन मिश्रित प्रयासों की पृष्ठभूमि में पिछले वर्ष बाली सम्मेलन हुआ, जिसकी मुख्य उपलब्धियां इस प्रकार प्रस्तुत की जा सकती हैं:

1. अनेक राष्ट्रों द्वारा अब तक ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी के प्रयास तो किए गए हैं परंतु उनके प्रयास वैश्विक लक्ष्यों को हासिल करने की दृष्टि से अपर्याप्त रहे हैं। फिर उनके द्वारा पारित कानूनों में 'राष्ट्रीय परिस्थितियों को देखते हुए' जैसे वाक्यांश जोड़ दिए जाने से उनकी प्रभाविता कम हो गई है। अमेरिका, कनाडा, जापान जैसे प्रमुख उत्सर्जक राष्ट्र इन्हीं वाक्यांशों की आड़ में वृद्धि का औचित्य सिद्ध करने का प्रयास करते रहे हैं। इन्हीं राष्ट्रों के कारण बाली सम्मेलन में भी सन 2050 तक उत्सर्जन में कमी की मात्रा के लक्ष्य निर्धारित नहीं किए जा सके हैं। केवल कमी लाने की बात कह कर और निर्धारित लक्ष्यों को फुटनोट में डाल कर ही संतोष करना पड़ा है।

2. विश्व के उत्सर्जन के आंकड़ों और उनके रुझानों को देखने पर पता चलता है कि सन 2050 तक अगर विकसित राष्ट्र अपने उत्सर्जन में 90 प्रतिशत की कमी कर भी लें और अभी से इस दिशा में प्रयास शुरू कर भी दें, तो भी जलवायु परिवर्तन पर नियंत्रण के लिए यह आवश्यक होगा कि विकासशील राष्ट्र भी इस दिशा में प्रयास आरंभ कर दें। इस तरह इस सम्मेलन में यह स्पष्ट रूप से सिद्ध हो गया कि जलवायु परिवर्तन को रोकने में विकसित और विकासशील सभी राष्ट्रों की ज़िम्मेदारी है। सबसे विवादास्पद मुद्दा यह रहा कि विकासशील राष्ट्र ग्रीनहाउस गैसों के

उत्सर्जन में कमी लाने के प्रति अपनी प्रतिबद्धता किस तरह प्रकट करें? चीन, मेक्सिको और दक्षिणी अफ्रीका ने ऐसी कमी लाने के बारे में अपनी प्रतिबद्धता प्रदर्शित की है जो उन्हें टिकाऊ विकास की दिशा में भी ले जाती है। पहले उनका मत होता था कि उनके द्वारा उत्सर्जित ग्रीनहाउस गैसों का स्तर काफी कम होने से उन्हें इस दिशा में प्रयास करने की आवश्यकता ही नहीं है।

3. विकासशील राष्ट्रों का यह तर्क स्वीकार कर लिया गया कि उनके द्वारा किए जाने वाले प्रयासों के लिए विकसित राष्ट्र तकनीकी मदद तथा वित्तीय सहायता भी प्रदान करें। उत्सर्जन में कमी के प्रयासों को टिकाऊ विकास की प्रक्रिया से जोड़ना उनके हित में ही कहा जाएगा। विकसित राष्ट्रों की दृष्टि से उत्सर्जन में कमी की संयुक्त और अलग-अलग ज़िम्मेदारी की स्वीकृति अच्छा कदम है।

4. बाली सम्मेलन में जलवायु परिवर्तन की प्रक्रिया को थामने के प्रयासों में वनों और वनीकरण के प्रयासों के महत्व को भी स्वीकार किया गया। यह भी स्वीकार किया गया कि वनों के नष्ट होने और वनों के घनत्व में कमी आने से पृथ्वी की कार्बन डाईआक्साइड सोखने की क्षमता में कमी आती है तथा वनीकरण एवं वनों के घनत्व में वृद्वि से यह क्षमता बढ़ती है। यह तय किया गया कि वनों के सरंक्षण के लिए प्रेरणा प्रदान करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर अलग से तंत्र विकसित किया जाए। भारत चाहता था कि वनों के सरंक्षण और उनके टिकाऊ प्रबंधन को भी चर्चा में शमिल किया जाए परंतु अतंतः इन्हें टिकाऊ विकास की प्रक्रिया का अंग मानकर इन पर अलग से विचार न करने का निर्णय लिया गया।

5. सभी राष्ट्र सहमत थे कि जलवायु परिवर्तन पर पूरी तरह रोक लगाना तत्काल संभव नहीं है, इसलिए इस परिवर्तन के साथ अर्थव्यवस्थाओं के अनुकूलीकरण के लिए एक कोश स्थापित किया जाए। परंतु विकसित राष्ट्रों द्वारा साफ-सुथरी तकनीकों को विकासशील राष्ट्रों की ओर स्थानांतरित करने के मुद्दे पर कोई निर्णय नहीं हो सका। विकासशील राष्ट्र चाहते थे कि विकसित राष्ट्र उन्हें इस तरह की तकनीकें बिना शर्त प्रदान करें। चीन एवं जी-77 (विकासशील राष्ट्रों का समूह) चाहते थे तकनीकी सहयोग की एक बहुपक्षीय व्यवस्था कायम की जाए।

भारत तीन कारणों से जलवायु परिवर्तन के मुद्दे को अपेक्षित महत्व प्रदान नहीं कर पाया है। भारत के सामने सर्वप्रथम तो विकास प्रक्रिया में वृद्धि कर करोड़ों लोगों को गरीबी और अभाव से मुक्ति दिलाना सर्वोपरि महत्व का है। फिर भारत के विकास में ऊर्जा की पूर्ति का बहुत अधिक महत्व है। देश में ऊर्जा की बढ़ती मांग की पूर्ति कोयला एवं तेल पर ही निर्भर है। दोनों की खपत में तेज़ी से वृद्धि हो रही है। ऐसे में ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी कैसे आ सकती है, उसमें तो वृद्धि ही होगी।

लेकिन अब भारत भी ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी के प्रयासों की दिशा में आगे बढ़ रहा है। जुलाई में जापान में जी-8 राष्ट्रों का सम्मेलन हुआ है, और उसमें भाग लेने के लिए प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह भी गए थे। उनके जाने की पूर्व संध्या पर भारत ने जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय एक्शन प्लान की घोषणा की है। इस एक्शन प्लान को विभिन्न क्षेत्रों में 8 मिशनों के द्वारा क्रियान्वित किया जाएगा। इस एक्शन प्लान के अंतर्गत अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में ऊर्जा के उपयोग में किफायत लाने तथा ऊर्जा की बढ़ती मांग की पूर्ति हेतु पवन ऊर्जा एंव सौर ऊर्जा के उत्पादन में वृद्धि हेतु योजनाबद्ध प्रयासों का निर्णय लिया गया है। जहां पवन ऊर्जा के उपयोग की दृष्टि से भारत का स्थान विश्व के शीर्ष राष्ट्रों में है, वहीं सौर ऊर्जा की दृष्टि से भारत में अधिक प्रगति नहीं हुई है जबकि इस दृष्टि से संभावनाएं काफी अधिक हैं। सौर ऊर्जा की दृष्टि यह निर्णय लिया गया है कि 12वीं योजना के अंत तक सौर ऊर्जा उत्पादन को बढ़ाकर 10,000 मेगावाट तक ले जाया जाएगा। साथ ही कोयले से चलने वाले 5000 मेगावाट के ताप बिजली घरों को बंद करने का निर्णय भी लिया गया है। 12वीं योजना अवधि में 10,000 मेगावाट के ताप बिजली घरों का उत्पादन बंद करने का लक्ष्य रखा गया है। ऊर्जा के उपयोग में बचत के लिए सीमेंट, लोहा एवं इस्पात, एल्यूमीनियम, रेल्वे, रासायनिक खाद जैसे उद्योगों को ऊर्जा में बचत के प्रमाण-पत्रों के व्यापार के लिए

प्रोत्साहित भी किया जा रहा है। भारत सरकार की मान्यता है कि उसके ये सब प्रयास उसके अपने घरेलू मामले हैं। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर तो भारत प्रति व्यक्ति ऊर्जा की खपत के समान और न्यायपूर्ण हक के लिए लड़ता रहेगा। साथ ही विकसित राष्ट्रों के ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी के अनिवार्य प्रयासों के लिए संघर्ष करता रहेगा।

कुल मिलाकर ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी के प्रयासों के लिए विश्व के विकसित एवं विकासशील, सभी राष्ट्रों के बीच सैद्धांतिक सहमति तो है परंतु व्यावहारिक स्तर पर कदमों के संदर्भ में अनेक असहमतियां हैं। ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में वृद्धि से पूरा विश्व न्यूनाधिक रूप से प्रभावित होने वाला है। परंतु सर्वाधिक प्रतिकूल प्रभाव विकासशील राष्ट्रों को झेलने पड़ेंगे जबकि इनके लिए ज़्यादा ज़िम्मेदार विकसित राष्ट्र हैं। विकासशील राष्ट्रों को मिलकर विकसित राष्ट्रों द्वारा किए जा रहे उत्सर्जन में कमी के लिए दबाव बनाना पड़ेगा, साथ ही स्वयं भी अपनी विकास प्रक्रिया में उत्सर्जन में कमी के लक्ष्य को जोड़ना पड़ेगा। ***(स्रोत फीचर्स)***